जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

सम्यग्दर्शन-ज्ञानप्रधान चारित्र ही धर्म है और साम्यभावरूप वीतराग चारित्र से परिणत आत्मा ही धर्मात्मा है। ह्न आचार्य कुन्दकुन्द एवं पंचपरमागम, पृ.56

वर्ष : 29, अंक : 3 | सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
मई (प्रथम), 2006 | प्रबन्ध सम्पादक : **पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी** | वार्षिक शुल्क : 25 रु., एक प्रति : 2/-

भगवान महावीर जयंती सानन्द सम्पन्न

1.भोपाल (म.प्र.) : यहाँ दिगम्बर जैन पंचायती ट्रस्ट कमेटी की ओर से जंगलवाले बाबा के नाम से प्रसिद्ध मुनिश्री चिन्मयसागरजी तथा मुनिश्री अनंतानंदसागरजी के सान्निध्य में दो दिवसीय महावीर जयन्ती समारोह का आयोजन किया गया। आप दोनों मुनिराजों के प्रवचनों से समाज लाभान्वित हुआ।

इस अवसर पर कमेटी के हार्दिक आमंत्रण पर पधारे अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर के जवाहर चौक, खुले मैदान में सार्वजनिक सभा में भगवान आत्मा पर और चौक धर्मशाला में मुनिराजों के सान्निध्य में णमोकार महामंत्र, जैन समाज की एकता और भगवान महावीर के जीवन पर तीन व्याख्यान हुये।

मुनिराजों ने अपने प्रवचनों में डॉ. भारिल्ल की भावना का खुले दिल से समर्थन करते हुये संस्था की गतिविधियों का स्वागत किया।

इस अवसर पर म.प्र. शासन के उद्योगमंत्री श्री बाबूलाल गौर, वित्तमंत्री श्री राघवजी भाई, नगर निगम के महापौर श्री सुनीलजी सुत एवं अध्यक्ष श्री रामदयालजी प्रजापति आदि गणमान्य अतिथि उपस्थित थे। समारोह में लगभग 5 हजार साधर्मियों ने लाभ लिया। **ह्न देवेन्द्र बड़कुल**

2.जबलपुर (म.प्र.) : यहाँ बड़ा फुहारा स्थित श्री महावीर दिगम्बर जैन मंदिर में महावीर जयन्ती के अवसर पर तीन दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन किया गया; इसके अन्तर्गत दिनांक 9 अप्रैल को जैनदर्शन और विज्ञान विषय पर तथा दिनांक 10 अप्रैल को भगवान महावीर और उनके सिद्धान्त विषय पर संगोष्ठी का आयोजन हुआ।

संगोष्ठी में जबलपुर के स्थानीय विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किये। गोष्ठी का संचालन प्रथम दिन पण्डित श्रेयांसजी शास्त्री तथा द्वितीय दिन श्री अशोकजी जैन ने किया।

दि. 11 अप्रैल को प्रात: ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना के व्याख्यान का लाभ मिला। तत्पश्चात् जैनसमाज के साथ विशाल शोभायात्रा में सम्मिलित होते हुये जैन युवा फैडरेशन द्वारा भक्ति गीतों का रसास्वादन कराया गया। रात्रि में आध्यात्मिक कवि सम्मेलन के अन्तर्गत गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के परिवर्तन दिवस एवं भगवान महावीर के सिद्धान्तों पर कवियों द्वारा विभिन्न कवितायें प्रस्तुत की गई। कार्यक्रम का संचालन पण्डित विरागजी शास्त्री ने किया।

दिनांक 11 से 15 अप्रैल तक बाल ब्र. सुमतप्रकाशजी के द्रव्य-गुण-पर्याय विषय पर मार्मिक प्रवचन हुये। इसी अवसर पर अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के संयोजन में **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** द्वारा लिखित **शाकाहार एवं अहिंसा** नामक पुस्तकें समाज में नि:शुल्क वितरित की गई। समस्त कार्यक्रमों में पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जैन एवं पण्डित मनोजजी जैन का सक्रिय सहयोग रहा। **ह्न अनुभव जैन**

3. डूंगरपुर (राज.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन समाज द्वारा महावीर जयन्ती की पूर्व संध्या पर एक आमसभा का आयोजन किया गया।

सभा के मुख्य वक्ता डॉ. महावीरप्रसादजी शास्त्री उदयपुर थे। उनका **भगवान महावीर का जीवन-दर्शन एवं अनेकान्त स्याद्वाद** विषय पर व्याख्यान का लाभ उपस्थित श्रोताओं को प्राप्त हुआ। साथ ही पण्डित रितेशजी शास्त्री डडूका का भी अहिंसा विषय पर मार्मिक व्याख्यान हुआ।

कार्यक्रम में वीतराग-विज्ञान पाठशाला के बच्चों द्वारा झांकियाँ प्रस्तुत की गई। कार्यक्रम की अध्यक्षता डूँगरपुर के प्रसिद्ध एडवोकेट श्री शुक्लाजी ने की। **ह्न रमणलाल शाह**

4. रतलाम (म.प्र.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन आदिनाथ हाथीवाला मन्दिर में महावीर जयन्ती के अवसर पर संवादमय नाटक पुण्य एवं धर्म की अदालत का मंचन किया गया तथा तत्त्वार्थसूत्र पर एक प्रश्नमंच भी कराया गया।

इससे पूर्व दिनांक 3 अप्रैल से 12 अप्रैल तक चैत्र माह के दशलक्षण पर्व में श्री बीस तीर्थंकर मण्डल विधान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर प्रतिदिन दोनों समय पण्डित पद्मकुमारजी अजमेरा के मार्मिक प्रवचनों का लाभ स्थानीय समाज को मिला। **ह्न पवन मोठीया**

5. बैंगलोर (कर्ना.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन ट्रस्ट के अन्तर्गत महावीर जयंती पर प्रात: पूजन-विधान के पश्चात् पण्डित अखिलेशजी शास्त्री बरां के प्रवचन का लाभ मिला। साथ ही अन्य साधर्मियों ने भगवान महावीर से संबंधित अपने-अपने विचार व्यक्त किये।

साधना चैनल देखना न भूलें

रात्रि 10.20 पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचनों को देखना न भूलें। प्रवचन प्रसारण में कोई समस्या हो तो श्री पीयूषकुमारजी शास्त्री से 09414717829 पर सम्पर्क करें।

सम्पादकीय –

ये तो सोचा ही नहीं

ह्न रतनचन्द भारिल्ल

2. अपने-अपने भाग्य का खेल...

(गतांक से आगे....)

ज्ञानेश के पिता रूढ़िवादी पुरातन पंथियों में अग्रगण्य थे, उन्हें धर्म-कर्म में मीन-मेख करना बिल्कुल पसंद नहीं था। इस मामले में ज्ञानेश एवं उसके पिता कभी एकमत नहीं हो पाये; फिर भी ज्ञानेश ने अपने **पिता की मान-मर्यादाओं का कभी उल्लंघन नहीं किया।**

ज्ञानेश के पिता ने तथाकथित धर्मगुरुओं से यह सुन रखा था कि धर्म के मामले में मीन-मेख अथवा शंका-आशंका प्रगट करने से अनर्थ हो जाता है, पाप भी लगता है; इसकारण उनकी धारणा बन गई थी कि धर्म तो श्रद्धा-भक्ति का विषय है, उसमें तर्क-वितर्क करना ही क्यों ?

ज्ञानेश के माता-पिता धर्मभीरु थे, इसकारण कुल परम्परागत लीक छोड़कर चलना, धर्म के बारे में शंका-आशंका करना उनके बलबूते की बात नहीं थी। उन्हें डर लगता था कि उनके किसी व्यवहार से साधु-संत, धर्मगुरु और देवी-देवता नाराज न हो जायें। उनकी इसप्रकार की धर्मभीरूता ज्ञानेश को रास नहीं आ रही थी।

ज्ञानेश के पिता अपनी धार्मिक अज्ञानता को छिपाने के लिए बड़े गर्व से कहते 'अध्यात्म की बातें हमारी समझ में भले न आएँ, पर हम धर्मकार्यों में कभी पीछे नहीं रहे। हमने अपनी पीढ़ियों से चली आई परम्पराओं को कभी नहीं छोड़ा, यही कारण है कि आज हमारा खानदान सदाचारी और संस्कारवान है; अन्यथा बिगड़ने में देर ही क्या लगती है ?'

यद्यपि यह सच है कि - इस धार्मिक आतंक से उनके परिवार का जीवन दुर्व्यसनों से दूर रहा; पर केवल इस कुलाचाररूप बाह्य धर्मप्रवृत्ति को ही धर्म मानकर जो वे मन ही मन संतुष्ट हो लेते और स्वयं को धर्मात्मा मानकर हर्षित होते, गौरवान्वित होते ह्न यह बात ज्ञानेश की अन्तरात्मा को स्वीकृत नहीं होती; अत: उसने संकल्प किया कि ह्न ''मैं पिताजी के विचारों से भी अप्रभावित रहकर धर्म की सच्चाई की तह तक पहुँचने का पूरा-पूरा प्रयास करूँगा, धर्म के नाम पर किसीप्रकार के पोपडम और आडम्बर में अटका नहीं रहूँगा और यदि संभव हुआ तो पिताश्री को भी धर्म के सत्य तथ्यों को समझाने का प्रयास करूँगा।''

ज्ञानेश बिना सोचे-विचारे परम्परागत लीक पर चलनेवालों में नहीं है। **'लीक छोड़ ही चलत हैं, शायर सिंह सपूत'**।

वह सोचता है कि **प्रत्येक कुल का, प्रत्येक जाति का, प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक सम्प्रदाय का धर्म अलग-अलग कैसे हो सकता है ? धर्म का स्वरूप तो एक ही होना चाहिए। जैसे कि ह्न आग तो कहीं भी हो, कभी भी हो, वह तो सर्वत्र व सदाकाल गर्म ही होगी; क्योंकि आग का धर्म तो उष्णता (गर्म) ही है न ?धर्म किसी जाति, कुल, सम्प्रदाय या परम्पराओं का मुंहताज नहीं है। धर्म तो इन सबसे ऊपर है, सर्वोपरि है।**

धर्म से भय कैसा ? **धर्मभीरुता ही तो व्यक्ति को अंधविश्वासी धर्मान्ध बनाती है।** अत: कोई कुछ भी क्यों न कहे - एकबार तो शान्ति से तर्क-वितर्क करके धर्म एवं पुण्य-पाप की तह तक पहुँचना ही होगा। अपने आत्मा के समता स्वभाव की ओर निरन्तर हो रहे **अपने शुभ-अशुभ या पुण्य-पाप भावों की पहचान तो करना ही होगी,** तभी सच्चे सुख की प्राप्ति होगी। धर्म के तलस्पर्शी ज्ञान बिना ऊपर-ऊपर से धर्मात्मा बने रहना अपने को अज्ञान के अन्धकार में रखना है।

संभव है, सच्चाई को पहचानने में अनजाने में कभी हमारी किसी पीढ़ी से भूल-चूक हो गई हो, तो क्या हम उसी भूल को दुहराते रहें ? साँप निकल जाने पर भी उसकी लकीर को ही साँप समझ कर उससे डरते रहें ? वाह ! जितने कुल, जितनी जातियाँ, जितने वर्ग उतने धर्म ? यह सब क्या है ?

देखो ! जो गंगाजल अबतक सबको पवित्र करता था, वही गंगा जल जब अलग-अलग जातियों एवं सम्प्रदायों के द्वारा घड़ों में भर लिया जाता है तो एक दूसरे के घड़े को छूने मात्र से वह अपवित्र होने लगता है। अत: ये जातिवर्ग और सम्प्रदायों के घड़े तोड़े बिना गंगाजल पवित्र नहीं रह सकेगा। इसी भाँति आत्मा का धर्म भी आत्मा-परमात्मा का सही श्रद्धान, ज्ञान और सम्यक आचरण में है। अपने आत्मा और आत्मा की निर्मल परिणति को पहचान कर उसी में जमने-रमने में है। राग-द्वेष-काम-क्रोध-मोह आदि विकृतियों में धर्म कहाँ ?

धनेश के पिता भूपेन्द्र पाश्चात्य वातावरण से पूर्णत: प्रभावित तो थे ही, उसी में रच-पच भी गये थे। धर्म की बातें न उन्होंने पहले कभी सुनी, न सुनने-समझने की कोशिश ही की।

फिल्मों में और लोक-जीवन में भी धर्म के नाम पर धंधा करनेवाले कतिपय ढोंगी धर्मात्माओं के विकृत स्वरूप को देखकर उनकी रही-सही आस्था भी धर्म पर से उठ गई थी। अब उन्हें धर्म एक ढोंग से अधिक कुछ नहीं लगता था। धर्म की बातें कल्पनालोक की कपोल-कल्पित लगने लगीं थीं।

वे अपने यौवन में राजनीति में सक्रिय रहे, एक दो बार एम.एल.ए. भी चुने गये; इसकारण वे अपने आपको बहुत बड़ा बुद्धिमान पढ़ा-लिखा इन्सान मानते थे, पर उनकी उस पैनी बुद्धि में यह बात समझ में क्यों नहीं आयी कि फिल्मों में तो हर बात को बढ़ा-चढ़ाकर ही प्रदर्शित किया जाता है और लोकजीवन में भी यदि कोई धर्म के नाम पर धोखा-धड़ी करे तो इससे धर्म कपोल-कल्पित कैसे हो गया ? सभी धर्मात्मा ढोंगी कैसे हो गये ?

फिल्मों में तो पुलिस और राजनेताओं को भी अधिकतर भ्रष्ट ही दिखाया जाता है, क्या उस आधार पर सभी पुलिसवालों और सभी राजनेताओं को अपराधी मानकर दण्डित किया जा सकता है ? पर इतना सोचने-समझने की उन्हें फुरसत ही न थी।

तथाकथित नेता भ्रष्ट हो सकते हैं, कुछ पुजारी और पण्डित पाखण्डी हो सकते हैं; कोई साधु ढोंगी हो सकता है; परन्तु राजनीति का नाम भ्रष्टता नहीं है, पूजा और ज्ञान पाखण्ड नहीं है। आत्मसाधना तो ढोंग नहीं है। अत: तथाकथित भ्रष्ट नेता, पाखण्डी पण्डित और ढोंगी साधु को देखकर ईमानदार नेता की, सच्ची साधना

की और ज्ञानी साधक की उपेक्षा तथा अनादर नहीं किया जा सकता।

बस, कमाना-खाना और मनोरंजन करना। यही भोगप्रधान भौतिक जीवन था धनेश के माता-पिता का। उनके इस वातावरण के प्रभाव से उनका बेटा धनेश भी नहीं बच पाया। वह भी भोग प्रधान भौतिक वातावरण में रंग गया, खाओ-पिओ और मौज उड़ाओ के कुमार्ग पर चल पड़ा। धनेश के उन्मार्गी होने से न केवल उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा, उसका व्यापार-उद्योग भी प्रभावित हुआ।

वस्तुत: संस्कारों के दो स्रोत (रास्ते) होते हैं। एक पूर्वजन्म से समागत और दूसरे माता-पिता, कुटुम्ब-परिवार आदि पूर्व पीढ़ियों से प्राप्त। जिनको जीवन में धार्मिक संस्कारों का सुयोग न पूर्वजन्म में मिला हो और न माता-पिता से ही मिल रहा हो, उनके दुर्भाग्य की तो बात ही क्या करें ? उन्हें तो चारों ओर फैले भौतिकता के जाल में फंसना ही है; पर जिन्हें सौभाग्य से कभी न कभी, कहीं न कहीं से धार्मिक संस्कारों का सुयोग मिल जाता है, उनका जीवन सफल हो जाता है। यही तो अपना-अपना भाग्य है।

कहा भी है ह्न **जो जैसी करनी करै सो तैसो फल पाय।**

यद्यपि अब ज्ञानेश और धनेश की विचारधारा में जमीन-आसमान का अन्तर आ गया था, तथापि उनकी मित्रता अभी भी उनके वैचारिक मतभेदों से प्रभावित नहीं हुई; क्योंकि **दोनों के विचारों में मतभेद तो था, पर मनभेद नहीं था,** यह अच्छी बात थी। यही कारण था कि वे एक-दूसरे को सुधारना चाहते थे।

धनेश सोचता ह्न ''ज्ञानेश की होनहार ही खोटी है। टेक्नीकल एजूकेशन के सब साधन सुलभ थे; पर उसका मन पढ़ने में लगा ही नहीं। अब दुकान पर दिन-भर गुमसुम-सा बैठा न जाने क्या सोचता रहता है ? बस, हंसने के नाम पर मन ही मन मुस्करा लेता है। न गप-शप करना, न नृत्य-गान देखना-सुनना।

ज्ञानेश की दुकान में भी कोई दम नहीं दिखती। कम्पिटीशन का जमाना है न! प्रतिस्पर्द्धा के कारण आज ईमानदारी की आजीविका दुर्लभ होती जा रही है। ईमानदारी से धंधा करने पर ग्राहकों के मन में विश्वास जम जाने पर कदाचित् ग्राहकी बढ़ भी जावे तो आस-पास के दुकानदार ईर्ष्या की आग में जलने लगते हैं। सब लोग मिलकर उसे उखाड़ने में लग जाते हैं, हो सकता है वह अस्थिर आजीविका के कारण ही परेशान रहता हो, वह अकेला भी पड़ गया है, उसे तो अब कोई ऐसा काम कर लेना चाहिए, जिसमें ईमानदारी से कुछ निश्चित, सुरक्षित और स्थाई आजीविका की व्यवस्था हो। तभी वह निश्चिन्त होकर धर्मसाधना और लोकोपकार कर सकता है। अन्यथा कैसे कटेगी इसकी इतनी लंबी जिंदगी ?

कभी अच्छा-सा मौका देखकर उससे बात करूँगा। देखता हूँ क्या हो सकता है ? हमउम्र होकर भी मुझ से दस-पन्द्रह वर्ष बड़ा दीखने लगा है। सच है, अधिक सोच-विचार व्यक्ति को असमय में ही बुजुर्ग बना देता है।

यद्यपि उसकी उम्र अभी कोई अधिक नहीं है; पच्चीस वर्ष की उम्र भी कोई उम्र है ? ये तो खेलने-खाने के दिन हैं; पर धर्म के चक्कर में पड़ जाने से उम्र के अनुपात से उसमें प्रौढ़ता कुछ अधिक ही आ गई है। उसके चेहरे पर चिन्तन की झलक भी स्पष्ट दिखाई देने लगी है। माथे पर तीन सल तो पड़े ही रहते हैं। पेन्ट-सूट के स्थान पर कुर्ता-धोती पहनने से भी वह बुजुर्ग-सा दीखने लगा है।''

जो जिस राह पर चल देता है वह उसे ही अच्छा मानता है अत: धनेश अपने मित्र को भी उसी राह पर ले जाना चाहता है; परन्तु धनेश को यह समझ में नहीं आ रहा था कि वह ज्ञानेश को कैसे समझाये ? इन्हीं विचारों में डूबे धनेश को नींद आ गई। ●

3.सच्ची प्रीति पैसे की मुँहताज नहीं होती..

''प्रीति न देखे जात अर पाँत, भूख न देखे रूखो भात।''

इस उक्ति के अनुसार जब ज्ञानेश और सुनीता का कॉलेज में एक-दूसरे का परिचय प्रीति में परिवर्तित हुआ, तब वे एक-दूसरे की आर्थिक और पारिवारिक परिस्थितियों से परिचित नहीं थे। **प्रीति और समर्पण में आर्थिक स्थिति जानने की और परिवार के परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। वस्तुत: प्रेम सम्बन्ध सुनियोजित कार्यक्रम के अनुसार नहीं होता। यह तो एक-दूसरे के अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व से प्रभावित होने पर सहजरूप से अनायास ही हो जाता है। इसमें क्यों, कैसे का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।**

जब ज्ञानेश और सुनीता को एक-दूसरे की आर्थिक स्थिति का पता चला तब भी वे उससे प्रभावित नहीं हुए। ज्ञानेश तो अपनी सीमित आय से ही संतुष्ट था, अत: उसे सुनीता की सम्पन्नता से कोई खास प्रयोजन नहीं था और सुनीता को भी ज्ञानेश की आर्थिक स्थिति की अपेक्षा नहीं थी; क्योंकि वह पितृगृह में श्रीसम्पन्न होकर भी बहुत सादगी पसन्द रही। उसकी आवश्यकतायें भी बहुत सीमित हैं। पिता की धनाढ्यता के अहं का भी उस पर कोई प्रभाव नहीं रहा। वह स्वभाव से ही बहुत ही सादा-वेशभूषा में सादगी से रहना पसन्द करती है।

धर्म के प्रति भी उसका बचपन से ही झुकाव रहा है। धार्मिक व्यक्तियों से मिलकर उसे विशेष हर्ष होता है। बी.ए. करने के बाद उसने अपनी रुचि से ही अनेक धर्मग्रन्थों का अध्ययन भी कर लिया। **इसकारण वह जानती थी कि मैं जन्म से पहले भी थी और मरण के बाद भी रहूँगी। मैं मात्र नारी नहीं, मैं इस नारी की देह में अवश्य हूँ; पर नारी से भिन्न आत्मा हूँ, कारण परमात्मा हूँ। इसतरह वह आत्मा-परमात्मा, पुनर्जन्म एवं पुण्य-पाप का स्वरूप भी भलीभाँति समझने लगी है।**

वह यह भी समझने लगी कि ह्न **पैसे का आना-जाना तो पुण्य-पाप का खेल है। जो सत्कर्म, दया, दान करेगा, न्याय-नीति से धनार्जन करेगा, उसका वर्तमान जीवन तो श्री सम्पन्न, सुखी और यशस्वी बनेगा ही, अगले जन्म में भी उसे उत्तम गति की प्राप्ति होगी।**

पुण्य योग से हुआ भी यही, सुनीता के साथ ज्ञानेश के प्रीति सम्बन्धों में तो अनायास प्रगाढ़ता हुई ही, साथ ही ज्ञानेश को भी एक ऐसा बिजनिस हाथ लग गया, जिससे उसे जल्दी ही अच्छी आर्थिक आय की संभावनाएँ प्रबल हो गईं। परन्तु श्रीदत्त सेठ अपनी लाड़ली बेटी का रिश्ता अपने बराबरी वाले किसी बड़े घर और पढ़े-लिखे वर के साथ करना चाहते थे। धनेश ही उन्हें इन सब दृष्टियों से ठीक लग रहा था।

यद्यपि इसी बीच श्रीदत्त सेठ को अपनी पुत्री का रुख भी ज्ञात हो गया कि वह ज्ञानेश को चाहती है। पहले तो उन्हें बहुत ही अटपटा लगा, अंतरंग में अन्तर्द्वन्द भी हुआ; क्योंकि एक ओर वे अपनी इकलौती बेटी के दिल को भी नहीं तोड़ना चाहते थे और दूसरी ओर सिम्पल ग्रेजुएट तथा छोटे से दुकानदार का बेटा ज्ञानेश उनका जमाई बने ऐसा तो श्रीदत्त सेठ स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। परन्तु **किसी के सोचने न सोचने से क्या होता है, होता तो वही है जो मंजूरे खुदा होता है। हम कौन होते हैं किसी के शादी-ब्याह के सम्बन्धों को नक्की करनेवाले ? ये तो पहले से ही नक्की होते हैं। भाग्य ही इनका विधाता होता है।**

सेठ ने भी ज्ञानियों के मुख से ये बातें सुनी तो थीं कि 'हुइये वही जो रामरचि राखा' तथा 'जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे!' उसने 'मैना सुन्दरी और श्रीपाल' नाम का पौराणिक नाटक भी देखा/पढ़ा था, जिसमें होनहार को ही प्रबल बताया गया है; परन्तु सेठ श्रीदत्त को इन बातों में विश्वास नहीं था। वह तो स्वयं ही सबका कर्त्ता-धर्त्ता (ईश्वर) बना बैठा था।

धनेश को जमाई बनाने के लिए सेठ श्रीदत्त ने बहुत प्रयास किए; परन्तु धनेश को एक तो पहले से यह पता था कि ज्ञानेश और सुनीता का परस्पर सहज आकर्षण है, वे एक-दूसरे को दिल से चाहते हैं। दूसरे, धनेश का सम्बन्ध धनश्री के साथ लगभग तय-सा था। इस कारण सेठ के लाखों-लाख प्रयत्न करने पर भी जब उनकी एक न चली तो अन्ततोगत्वा श्रीदत्त सेठ ने अपनी इकलौती बेटी की खुशी के लिए ज्ञानेश के साथ सम्बन्ध करना स्वीकृत कर तो लिया; पर इस शर्त के साथ किया कि ज्ञानेश को हमारा घर जमाई बनकर रहना होगा। हमारी बेटी जो अबतक राजशाही ठाट-बाट में पली-पुसी, बड़ी हुई और पढ़ी-लिखी है, वह आधुनिक सुख-सुविधाओं के बिना एक साधारण से घर में कैसे रह सकेगी?

''न भाई ! न, यदि ज्ञानेश को मेरी घर जमाई बनने की शर्त स्वीकृत हो तो ही मैं अपनी बेटी का हाथ ज्ञानेश के हाथ में देने को तैयार हूँ। हाँ, मैं यह आश्वासन देता हूँ कि ह्न शादी होते ही मैं उसे घर-जमाई के बतौर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का वारिस बना दूँगा और अच्छे धंधे से भी लगा दूँगा।''

यद्यपि ज्ञानेश एवं सुनीता एक दूसरे को हृदय से चाहते हैं, परन्तु ज्ञानेश ने पूरी दृढ़ता के साथ श्रीदत्त सेठ के सामने दो बातें स्पष्ट कर दीं कि ह्न ''एक तो यह कि ह्न मैं ससुराल की सम्पत्ति किसी भी हालत में स्वीकार नहीं करूँगा। मुझे जो न्याय-नीति ईमानदारी से धन मिलेगा उसी में संतुष्ट रहकर जीवन निर्वाह करूँगा ह्न यह मेरा दृढ़ संकल्प है। दूसरी बात यह कि ह्न यदि मेरी मर्जी के मुताबिक सुनीता का सम्बन्ध मुझसे नहीं हो सकेगा तो मैं आजीवन कुँवारा ही रहूँगा। अब मेरे जीवन में अन्य कोई लड़की नहीं आयेगी। यह भी मेरा दृढ़ निश्चय है। आपके लिए यदि कोई योग्य घर-जमाई मिल जाता है और सुनीता उसे अपना लेती है तो ऐसा करने को आप और सुनीता स्वतंत्र हैं ह्न इसका मुझे जरा भी अफसोस नहीं है। सुनीता के सुख के लिए भी मैंने सब विकल्प खुले रखे हैं; अत: आप परेशान न हों।''

श्रीदत्त सेठ ने संतोष प्रगट करते हुए कहा ह्न ''अरे भाई ज्ञानेश ! तुम तो बहुत होनहार हो, मुझे तुम्हारे भाग्य तथा परिश्रम और पुरुषार्थ पर पूर्ण विश्वास है।''

सेठ श्री दत्त ने सोचा ह्न ''ज्ञानेश धर्मात्मा तो है ही उसका भाग्य भी बलवान है और निर्लोभी भी है।''

यह सोचकर श्रीदत्त सेठ ने तत्काल अपनी बेटी सुनीता का हाथ ज्ञानेश के हाथ में देने का निश्चय कर लिया।

ज्ञानेश ने श्रीदत्त की भावना को जानकर गंभीर होकर उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा कि ह्न सुनीता के माता-पिता होने से अब आप मेरे लिए भी माता-पिता तुल्य हो गये हैं। अत: अब आप बुढ़ापे के सहारे के लिए कोई चिन्ता न करें। हम हैं न आपकी सेवा करने के लिए।

मैं आपका अपना होने के कारण अधिकारपूर्वक आपको बिना माँगे एक सलाह देना चाहता हूँ। यदि आपको मेरी सलाह अच्छी लगे, आपका दिल स्वीकार करे तो आप मानें, अन्यथा कोई बात नहीं। मेरा कहना यह है कि ह्न ''आप अपनी सम्पूर्ण चल-अचल सम्पत्ति का अपने नाम से ही जनहित के लिए एक परमार्थ ट्रस्ट बना दें और उसका एक ऐसा ध्रुव फण्ड कायम कर दें कि जिसके ब्याज से प्राप्त धन का आप मुक्त हस्त से दान कर सकें। जरूरत के अनुसार मूलधन को भी दिल खोल कर खर्च करें। आपके बाद आपके द्वारा नियुक्त ट्रस्टी उस ध्रुव फण्ड का सदुपयोग करते रहेंगे, ट्रस्ट का अच्छा काम देखकर जनसहयोग से ध्रुवफण्ड भी बढ़ता रहेगा। इसतरह आपकी गाढ़ी कमाई का शताब्दियों तक सदुपयोग तो होता ही रहेगा, आपका नाम भी अमर हो जायेगा।''

ज्ञानेश की ट्रस्ट सम्बन्धी सही सलाह सुनकर और नि:स्वार्थ सेवा की भावना देखकर श्रीदत्त सेठ गद्-गद् हो गया। उसने महसूस कियाह्न ''ज्ञानेश और उसके पिता धर्मेन्द्र का जैसा नाम है, वैसा इनका जीवन है। इन्होंने दहेज में तो कुछ चाहा ही नहीं, इन्हें मेरी सम्पत्ति की भी चाह नहीं, कितनी निर्लोभी प्रवृत्ति है इसकी ?

अरे ! दुनिया में पैसा ही सबकुछ नहीं होता ह्न यह बात ज्ञानेश ने मात्र कहकर नहीं, बल्कि व्यवहार में करके दिखा दिया। सचमुच यह धन-वैभव संयोग तो पुण्य-पापका खेल है। कभी यहाँ तो कभी वहाँ। मैं तो सारी सम्पत्ति ज्ञानेश को ही सौंप दूँगा। वह जो चाहे करे? अब तो मैं सभी चिन्ताओं से मुक्त हो गया हूँ।''

संयोग से ज्ञानेश की पत्नी सुनीता भी ज्ञानेश की भाँति ही सर्वगुण सम्पन्न है। क्यों न होगी ? समान गुण वालों में ही तो सहज-स्वभाविक प्रीति और आकर्षण होता है।

ज्योतिषियों के द्वारा जन्म-पत्री के आधार से मिलाये गुण तो कभी गलत भी हो सकते हैं, पर ज्ञानेश और सुनीता के गुणों का मिलान सही सिद्ध हो रहा है। कॉलेज के जीवन में इन दोनों ने परस्पर मिलकर इन्हीं सद्गुणों का मिलान ही तो किया था।

ऐसा कौन नवदम्पत्ति युगल है, जो विवाह उपरान्त साथ-साथ नहीं रहना चाहते; परन्तु **जो अपने ऐशो-आराम से अपने कर्तव्य और दायित्व को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं, जो अपनी सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं को तिलाञ्जलि देकर भी अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हैं, अपनी जिम्मेदारी निभाते हैं, वे ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एवं अपने लक्ष्य में सफल होते हैं।** **(क्रमश:)**

कविता ....

इंतजार

कब से खड़े हैं आप कतार में
मोक्ष महल की,
इतनी देर तो
आपने कहीं भी
कभी भी इंतजार नहीं किया ?
न रेल के आरक्षण के लिये
न सिम कार्ड के लिये
और किसी के लिये भी नहीं
न नौकरी के लिये
न शादी के लिये
वैसे छह महिने आठ समय में
छह सौ आठ जीव मुक्त हो रहे हैं।
भव्यत्व का वैध प्रवेश पास
आपके पास भी है
फिर भी आपको करना पड रहा है इंतजार
दूसरी जगह अगर आप होते
तो हरगिज नहीं करते इंतजार
यहाँ पर आपकी सहन शक्ति
आपकी शांतिप्रियता, आपका संयम
वाकई अनुकरणीय है
पर आप और कितनी देर करेंगे इंतजार ?
आपके उत्साह की भी एक सीमा है
आपकी सहनशक्ति का
बांध कहीं टूट न जाये ?
आपका उत्साह कहीं ठंडा न पड जाये ?
इससे पहले आप खूब जोर लगाये
आचार्य ने भी आपको
छह महीने की ही मुद्दत दी थी
फिर यह भव्यत्व का प्रवेश पास
बैंक ड्राफ्ट की तरह
अवैध हो जायेगा
उसका नवीनीकरण कराना
फिर कितना मंहगा पडेगा।

ह्न बाहुबली भोसगे, आइजोल

चमत्कार

अरे ! विदुषी, जयजिनेन्द्र ! कहाँ जा रही हो ?

जयजिनेन्द्र जिज्ञासा ! जिनमंदिर जा रही हूँ, सुना है कोई युवा विद्वान आये हैं, जो बहुत ही आध्यात्मिक और सारगर्भित व्याख्यान करते हैं, उन्हें चारों अनुयोगों का अच्छा ज्ञान है।

अरे ! जिज्ञासा तुम्हें पता नहीं, वह तो अपनी मति बहन का भतीजा है, जो बचपन में गर्मी की छुट्टियों में यहाँ आता था।

हे भगवान ! वह शैतान और आवारा लड़का।

वह अब शैतान और आवारा नहीं, बड़ा विद्वान हो गया है और पूरे देश में प्रवचन करने जाता है।

मुझे तो विश्वास नहीं होता। दिन भर चौराहे पर चाट-पकौडी, बर्फ के गोले खाता और सबको परेशान करता था।

लेकिन जिज्ञासा अब तो वह सात्विक भोजन करता है। बाजार की वस्तुयें और अभक्ष्य तो अब उसके लिये पुरानी बातें हैं।

लेकिन विदुषी यह सब हुआ कैसे ? क्या कोई चमत्कार है ?

हाँ ! चमत्कार ही समझो।

ज्यादा पहेलियाँ न बुझा। जल्दी से बता यह हुआ कैसे ?

मति बहन बता रही थी कि उसे जयपुर के टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय पढ़ने भेजा था। वहाँ पर पाँच वर्ष में अनेक विद्वानों के सान्निध्य में रहकर विधिवत् शास्त्र अध्ययन किया और शास्त्री की डिग्री प्राप्त की है।

लेकिन इतना परिवर्तन हुआ कैसे ?

वहाँ के वातावरण के कारण। सुना है वहाँ का वातावरण ही कुछ ऐसा है कि यदि बालक थोडी-सी भी रुचि से अध्ययन करे तो परिवर्तन होते देर नहीं लगती। वहाँ सुबह से लेकर रात तक अध्ययन कराते हैं। टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय का तो यह सूत्र है कि **आप हमें बालक दो हम आपको विद्वान देंगें।**

अच्छा ! फिर तो मैं अपने **यश** को भी जयपुर भेजूँगी।

हाँ ! जरूर भेजना। इसके लिये तुम्हें अपने बेटे **यश** को देवलाली (नासिक-महा.) में 9 मई,2006 से लगनेवाले आध्यात्मिक शिक्षण प्रशिक्षण शिविर में भेजना होगा। वहाँ पर संस्था के विद्वान उसका इंटरव्यू लेंगे।

जरूर, मैं आज ही टिकिट मंगाती हूँ।

अब देर न करो। मुझे भी मंदिर जाना है। प्रवचन का समय हो गया है।

हाँ ! हाँ ! चलो, जरा मैं भी देखूँ ये चमत्कार।

ह्न विराग शास्त्री, जबलपुर

शब्दों की रेल

अरहंत बने हैं इंजन हमारे,
ज्ञानी बने हैं गार्ड हमारे।
त्रस-स्थावर पर्यायें डिब्बे हैं,
पुण्य-पाप की पटरी पर जो चलते हैं।
अनादि निगोद से गाडी आरंभ होती है,
आयु के सिग्नल से जो चलती रुकती है।
चार गति, चौरासी योनि तो हैं मध्य पडाव,
सिद्धशिला ही है हमारा अंतिम पडाव।
इसप्रकार होती है यात्रा पूरी,
छुक-छुक चलती रेल हमारी।

उक्त कविता डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया द्वारा लिखित नवीनतम कृति '**शब्दों की रेल**' से दी गई है; जिसमें बालकों को कविताओं के माध्यम से जैन शब्दावली का ज्ञान कराया गया है। शब्दों के साथ-साथ भावों को भी व्यक्त करनेवाली यह कृति बाल-अन्ताक्षरी के लिये भी उपयोगी है।

आकर्षक कागज एवं मल्टीकलर छपाईवाली यह पुस्तक मात्र 17/-रुपये में उपलब्ध है। जो भी साधर्मी इसे प्राप्त करना चाहते हो, वे शीघ्र सम्पर्क करें ह्न

ह्न प्रकाशन मंत्री, अविनाश टडैया,
मो. 09821923722

हार्दिक बधाई !

श्री टोडरमल दि. जैन सि.महाविद्यालय के स्नातक डॉ. महावीरजी शास्त्री, उदयपुर को अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन एवं जैन समाज डूँगरपुर द्वारा भगवान महावीर जयंती की पूर्व संध्या पर पत्रकार कॉलोनी डूँगरपुर में आयोजित आमसभा में शॉल ओढ़ाकर एवं प्रशस्तिपत्र भेंटकर **जैन आध्यात्मिक साहित्यकार** की उपाधी से सम्मानित किया गया। ज्ञातव्य है कि डॉ.महावीरप्रसादजी इस सभा के मुख्य वक्ता थे।

सभा के अध्यक्ष एडवोकेट शुक्लाजी थे तथा कॉलोनी के पार्षद श्री चौबीसाजी, समाज अध्यक्ष श्री बदामीलालजी जैन, मंत्री श्री रमणलालजी शाह तथा कार्यक्रम संयोजक एवं फैडरेशन अध्यक्ष श्री लक्ष्मीचन्दजी जैन उपस्थित थे। **ह्न जिनेन्द्र शास्त्री**

जैन पथप्रदर्शक को प्राप्त सहयोग राशियाँ

1. श्रीमती कमलादेवी शाह-जौहरी बाजार, जयपुर द्वारा 500/- रुपये प्राप्त हुये है।

2. श्रीमती शान्तीबाई जैन धर्मपत्नी श्री बाबूलालजी जैन बानपुर की स्मृति में पण्डित विकासजी जैन बानपुर की ओर से 251/- रुपये प्राप्त हुये।

3. श्री त्रिलोकचन्द्रजी जैन, मलकापुर के सुपुत्र चि. सन्मति जैन का विवाह सौ. मुक्ति जैन के साथ सम्पन्न हुआ। इस उपलक्ष्य में आपकी ओर से 200/- रुपये प्राप्त हुये।

4. श्री बाबूभाई परीख, मुम्बई की ओर से 50/- रुपये प्राप्त हुये।

तत्त्वचर्चा

प्रवचनसार का सार 50

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

आत्मा अमूर्तिक होने पर भी वह मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ कैसे बँधता है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्यदेव ने कहा है कि ह्न आत्मा के अमूर्तिक होने पर भी वह मूर्तिक पदार्थों को कैसे जानता है ? जैसे वह मूर्तिक पदार्थों को जानता है; उसीप्रकार मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ बँधता है।

वास्तव में अरूपी आत्मा का रूपी पदार्थों के साथ कोई संबंध न होने पर भी अरूपी का रूपी के साथ संबंध होने का व्यवहार भी विरोध को प्राप्त नहीं होता। जहाँ ऐसा कहा जाता है कि आत्मा मूर्तिक पदार्थ को जानता है; वहाँ परमार्थत: अमूर्तिक आत्मा का मूर्तिक पदार्थ के साथ कोई संबंध नहीं है; उसका तो मात्र उस मूर्तिक पदार्थ के आकार रूप होने वाले ज्ञान के साथ ही संबंध है और उस पदार्थाकार ज्ञान के साथ के संबंध के कारण ही अमूर्तिक आत्मा मूर्तिक पदार्थ को जानता है ह्न ऐसा अमूर्तिक-मूर्तिक का संबंध रूप व्यवहार सिद्ध होता है।

इसीप्रकार जहाँ ऐसा कहा जाता है कि अमुक आत्मा का मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ बंध है; वहाँ परमार्थत: अमूर्तिक आत्मा का मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ कोई संबंध नहीं है; आत्मा का तो कर्मपुद्गल जिसमें निमित्त हैं ह्न ऐसे रागद्वेषादिभावों के साथ ही सम्बन्ध (बंध) है और उन कर्मनिमित्तक रागद्वेषादि भावों के साथ सम्बन्ध होने से ही इस आत्मा का मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ बंध है।

यद्यपि मनुष्य को स्त्री-पुत्र-धनादि के साथ वास्तव में कोई संबंध नहीं है; वे उस मनुष्य से सर्वथा भिन्न हैं; तथापि स्त्री-पुत्र-धनादि के प्रति राग करनेवाले मनुष्य को राग का बन्धन होने से और उस राग में स्त्री-पुत्र-धनादि के निमित्त होने से व्यवहार से ऐसा अवश्य कहा जाता है कि इस मनुष्य को स्त्री-पुत्र-धनादि का बन्धन है; इसीप्रकार, यद्यपि आत्मा का कर्मपुद्गलों के साथ वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं है, वे आत्मा से सर्वथा भिन्न है; तथापि रागद्वेषादि भाव करनेवाले आत्मा को राग-द्वेषादि भावों का बन्धन होने से और उन भावों में कर्मपुद्गल निमित्त होने से व्यवहार से ऐसा अवश्य कहा जा सकता है कि इस आत्मा को कर्मपुद्गलों का बन्धन है।''

जिस व्यवहार से आत्मा पर को जानता है; उसी व्यवहार से आत्मा का शरीर एवं कर्म से संबंध है।

अब इसके बाद आचार्य यह स्पष्ट करेंगे कि आत्मा में उत्पन्न होनेवाले मोह-राग-द्वेषादि भी पर हैं; किन्तु इनका आत्मा के साथ बंध कहा जाता है। पुद्गल से तो आत्मा बंधा ही नहीं है। बंधने के लिए दो पदार्थ होने चाहिए; उनमें प्रथम तो जीव है एवं दूसरे शरीर/कर्मादि न होकर मोह-राग-द्वेषादि भाव हैं। •

उन्नीसवाँ प्रवचन

प्रवचनसार परमागम के ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार में समागत ज्ञेयज्ञानविभागाधिकार पर चर्चा चल रही है। प्रवचनसार गाथा 173 में यह प्रश्न उपस्थित हुआ था कि मूर्त पुद्गल तो रूपादिगुणयुक्त होने से परस्पर बंधयोग्य स्पर्शों से बंधते हैं; परन्तु उससे विपरीत अमूर्त आत्मा पौद्गलिक कर्मों को कैसे बाँधता है ?

यदि यह कहें कि आत्मा पर से बंधा नहीं है, वह स्वयं से स्वयं ही बंधा है तो अपने में अपना बंध कैसे हो सकता है ? क्योंकि बंध के लिए कम से दो तो होना ही चाहिए।

इस प्रश्न के उत्तर के लिए गाथा 175 की टीका द्रष्टव्य है ह्न

''प्रथम तो यह आत्मा उपयोगमय है; क्योंकि यह सविकल्प और निर्विकल्प प्रतिभासरूप है अर्थात् ज्ञान-दर्शन स्वरूप है।

उसमें जो आत्मा विविधाकार प्रतिभासित होनेवाले पदार्थों को प्राप्त करके मोह, राग अथवा द्वेष करता है; वह आत्मा ह्न काला, पीला और लाल आश्रय जिनका निमित्त है ऐसे कालेपन, पीलेपन और लालपन के द्वारा उपरक्त स्वभाववाले स्फटिकमणि की भाँति ह्न पर जिनका निमित्त है ऐसे मोह, राग और द्वेष के द्वारा उपरक्त विकारी, मलिन, कलुषित आत्मस्वभाववाला होने से, स्वयं अकेला ही बंधरूप है; क्योंकि मोह-राग-द्वेषादि भाव उसका द्वितीय है।''

इस टीका में यह कहा गया है कि प्रत्येक आत्मा उपयोगमय है। उपयोग सविकल्प और निर्विकल्प के भेद से दो प्रकार का है। दर्शनोपयोग को निर्विकल्प उपयोग कहते हैं और ज्ञानोपयोग को सविकल्प उपयोग कहते हैं। इसप्रकार ज्ञान का स्वरूप ही विकल्पात्मक है तथा जो स्वरूप होता है, उसका कभी निषेध नहीं होता है। अत: जब हम निर्विकल्प अनुभूति की बात करते हैं; तब ज्ञानात्मक विकल्पों का निषेध नहीं होता, रागात्मक विकल्पों का ही निषेध होता है। ज्ञान का स्वरूप विकल्पात्मक है; अत: वह तो आत्मा में सदा रहेगा ही।

बन्ध तो दो के बीच होता है, अकेला आत्मा बंधस्वरूप कैसे हो सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर इस टीका में इसप्रकार दिया है कि आत्मा को बंधने के लिए कोई दूसरा चाहिए तो वह दूसरा मोह-राग-द्वेषरूप भाव है। इसप्रकार मोह-राग-द्वेषादि भाव के द्वारा मलिन स्वभाववाला आत्मा स्वयं ही भावबंध है।

यह बात समझाने के लिए टीका में स्फटिक मणि का उदाहरण दिया है कि जिसप्रकार स्फटिक मणि में जिस रंग की डाँक लग जाय, वह उसी रंग का हो जाता है।

ध्यान रहे वह स्फटिकमणि उस डाँक की वजह से रंगीन नहीं हुआ; अपितु स्फटिकमणि का ही ऐसा स्वभाव है कि उसमें जिस रंग की डाँक लगे, वह उसीरूप हो जाता है। तात्पर्य यह है कि स्फटिकमणि में डाँक ने कुछ कर दिया ह्न ऐसा नहीं समझना।

उसीप्रकार आत्मा में परपदार्थ झलकते हैं और उन परपदार्थों के लक्ष्य से राग-द्वेष होता है और उन राग-द्वेष में पुराने कर्मों का उदय भी निमित्त है और परपदार्थ भी निमित्त हैं। अन्तरंग निमित्त तो पुराने कर्मों का उदय है और बाह्य निमित्त परपदार्थ हैं।

अरे भाई। संसारावस्था में अज्ञानदशा में जीव का मोह-राग-द्वेष

करने का स्वभाव है, जिसे वैभाविक शक्ति कहते हैं। वैभाविक शक्ति के कारण जीव मोह-राग-द्वेषरूप परिणमता है।

महिला की संगमरमर की नग्न मूर्ति को देखकर किसी व्यक्ति को मोह-राग-द्वेष होता है और किसी अन्य व्यक्ति को नहीं होता है; इससे सिद्ध होता है कि उस मूर्ति ने कुछ नहीं किया। उदाहरण में अजीव संगमरमर की मूर्ति की बात इसलिए की; क्योंकि यदि चेतन स्त्री हो, तो वह लुभाने की कोशिश सक्रियता से कर सकती है; लेकिन मूर्ति तो कुछ भी नहीं करती।

अब, यदि संगमरमर की मूर्ति कुछ करती होती तो प्रत्येक देखनेवाले व्यक्ति को मोह-राग-द्वेष उत्पन्न होना चाहिए; लेकिन ऐसा नहीं होता है। इस उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि हमारे ही अंदर ऐसी कोई योग्यता है; जिसके कारण मोह-राग-द्वेष होता है।

अब समस्या यह है कि लोग कहते हैं कि यदि परपदार्थ जानने में नहीं आते, तो मोह-राग-द्वेष नहीं होता। इसप्रकार वे लोग जानने पर ही पूरा दोष मढ देते हैं।

अरे भाई ! इससे अच्छे तो हम पहले ही थे; क्योंकि पहले हम जड़ कर्म को मोह-राग-द्वेष का कारण कहते थे और अब अपने स्वभाव अर्थात् जानने को ही मोह-राग-द्वेष का कारण मान रहे हैं। पहले हम कहते थे कि पर को हटाओ; किन्तु अब हम कहने लगे कि पर को जानो ही मत।

अन्य दर्शनवाले कहते हैं कि ईश्वर जगत का कर्त्ता है और यदि जैनी कहें कि कर्म कर्त्ता है तो मैं कहना चाहता हूँ कि यदि पर को ही कर्त्ता मानना था तो जड़ेश्वर कर्म की अपेक्षा चेतन ईश्वर को ही कर्त्ता मान लेते। कर्म को कर्त्ता कहकर परद्रव्य को तो कर्त्ता मान ही लिया है। अरे भाई। परद्रव्य हमारा कर्त्ता-धर्ता नहीं है। हमारे सुख-दु:ख के जिम्मेदार हम स्वयं ही हैं।

अरे भाई ! पदार्थों का स्वभाव ज्ञेयत्व है, प्रमेयत्व है। अत: उन पदार्थों को किसी न किसी ज्ञान का विषय बनने से कौन रोक सकता है? आत्मा का स्वभाव जानना है, इसलिए आत्मा को ज्ञेयों को जानने से भी कौन रोक सकता है। ऐसा भी नहीं है कि पर-पदार्थों को समीप जाकर जानेगे, तभी वे जानने में आएंगे; क्योंकि ज्ञान का स्वभाव दूर से ही ज्ञेयों को जानने का है। केवली भगवान अलोकाकाश को जानते हैं तो दूर से ही तो जानते हैं।

अरे भाई ! अलोकाकाश को तो हम भी जानते हैं; क्योंकि शास्त्रों से जानना भी तो जानना ही है। इसप्रकार परपदार्थ बंध का कारण नहीं हैं; अपितु उन पदार्थों को जानकर उनमें एकत्वबुद्धि करना बंध का कारण है।

इसप्रकार हमने जाना कि बंध होने में न तो परपदार्थों का दोष है और न ही आत्मा के जाननेरूप स्वभाव का; अपितु पर-पदार्थों को जानकर उनसे होनेवाले मोह-राग-द्वेष ही बंध के कारण हैं।

इसप्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि एक आत्मा है और दूसरे मोह-राग-द्वेषादि भाव ह्न इन दो में बंध होता है। तात्पर्य यह है कि मोह-राग-द्वेषादि भावों के द्वारा मलिन स्वभाव वाला आत्मा स्वयं ही भावबंध है; क्योंकि षट्कारक एक ही द्रव्य में घटित होते हैं।

पंचास्तिकाय ग्रन्थ की 62वीं गाथा में विकार के अभिन्न षट्कारक के माध्यम से भी यह बात स्पष्ट की गई है।

तदनन्तर भावबंध से द्रव्यबंध का स्वरूप कहनेवाली गाथा 176 की टीका इसप्रकार है ह्न

''यह आत्मा साकार और निराकार प्रतिभासस्वरूप अर्थात् ज्ञान-दर्शनस्वरूप होने से प्रतिभास्य (प्रतिभास होने योग्य) पदार्थ समूह को जिस मोहरूप, रागरूप या द्वेषरूप भाव से देखता है और जानता है, उसी से उपरक्त होता है। वह उपराग (विकार) ही वास्तव में स्निग्ध-रूक्षत्वस्थानीय भावबंध है और उसी से पौद्गलिक कर्म बँधता है। इसप्रकार द्रव्यबंध का निमित्त भावबंध है।''

दो रेत के परमाणु आपस में नहीं बँधते हैं, दो तेल के परमाणु भी आपस में नहीं बंधते हैं; क्योंकि रेत के दोनों ही परमाणु रूक्ष हैं और तेल के दोनों ही परमाणु स्निग्ध हैं; किन्तु रेत और तेल के परमाणु आपस में बंध जाते हैं; क्योंकि उनमें कुछ परमाणु स्निग्ध और कुछ रूक्ष हैं।

जिसप्रकार स्त्री की शादी स्त्री से नहीं होती, पुरुष की शादी पुरुष से नहीं होती। तात्पर्य यह है कि स्त्री की शादी पुरुष से और पुरुष की शादी स्त्री से होती है; उसीप्रकार स्निग्ध परमाणुओं का बंध स्निग्ध से नहीं होता और रूक्ष का रूक्ष से नहीं होता; पर स्निग्ध और रूक्ष का परस्पर बंध होता है।

जिसप्रकार काम करने के लिए एक आदमी के पास पैसा है; पर काम करने की क्षमता नहीं है एवं दूसरे आदमी के पास काम करने की क्षमता है; पर पूँजी नहीं है; इसलिए वे दोनों भागीदार बन जाते हैं ह्न एक काम करनेवाला भागीदार और दूसरा पूँजी लगानेवाला भागीदार। दो काम करने की क्षमता वाले भागीदार नहीं बन सकते, न दो पूँजी वाले भागीदार बन सकते हैं। उसीप्रकार स्निग्ध का स्निग्ध के साथ बंध नहीं होता एवं रूक्ष का रूक्ष के साथ बंध नहीं होता।

आगे आचार्य कहते हैं कि आत्मा और पुद्गल का जो बंध होता है, उसके लिए भी स्निग्धता और रूक्षता चाहिए। स्निग्धता और रूक्षता के बिना जब पुद्गल का पुद्गल से बंध नहीं होता; तब पुद्गल का जीव के साथ बंध कैसे हो ? इसका उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं कि जब आत्मा परपदार्थों को राग-द्वेष-मोह पूर्वक जानता है; तब बंध होता है।

पदार्थों को 'यह मैं हूँ' इसप्रकार जानने का नाम मोहपूर्वक जानना है, 'ये पदार्थ मेरे लिए सुखकर हैं' इसप्रकार जानने का नाम रागपूर्वक जानना है और 'ये पदार्थ मेरे को दु:खरूप हैं' इसप्रकार जानने का नाम द्वेषरूप जानना है। मात्र 'जानना' बंध का कारण नहीं है, मोह-राग-द्वेष पूर्वक जानना ही बंध का कारण है।

'ये मैं हूँ', 'ये मेरा है', 'ये मुझे अनुकूल हैं', 'ये मुझे प्रतिकूल हैं' ह्न इसप्रकार जानना ज्ञान का स्वभाव नहीं है; यह तो मोह-राग-द्वेष का लक्षण है। मोह-राग-द्वेष पूर्वक जानना बंध का कारण है, इसमें 'जानना बंध का कारण है' इस बात पर जोर नहीं दिया जाना चाहिए।

टीका में तो प्रतिभास शब्द आया है। कुछ लोग कहते हैं कि प्रतिभास अलग है और जानना अलग है। परपदार्थ प्रतिभासित होते हैं और स्व को जाना जाता है; परन्तु वस्तुत: प्रतिभास और जानने में कुछ भी अन्तर नहीं है। अरे भाई ! ऐसा कुछ भी नहीं है।

केवलज्ञान में स्व और पर दोनों भासित होते हैं, ज्ञान को स्व-परावभासी कहा गया है। 'अवभासी' शब्द का प्रयोग स्व और पर दोनों के साथ किया गया है। चाहे ऐसा कहो कि पर प्रतिभासित होते हैं और स्व जानने में आते हैं और चाहे ऐसा कहो कि स्व प्रतिभासित होता है और पर जानने में आते हैं ह्न एक ही बात है। इनमें कोई अंतर नहीं है। **(क्रमश:)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

निबन्ध प्रतियोगिता आयोजित

अध्यात्मतीर्थ आत्मसाधना केन्द्र दिल्ली द्वारा ह्न **''विश्व शान्ति में जैनधर्म का योगदान''** विषय पर निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है।

प्रथम तीन पुरस्कृत प्रतियोगियों को क्रमश: 5100/-रुपये, 3100/- रुपये एवं 1100/- रुपये की राशि एवं प्रमाणपत्र वर्ष 2007 के क्षमावाणी पर्व पर आयोजित विद्वत्सम्मान समारोह के अवसर पर प्रदान कर सम्मानित किया जायेगा। साथ ही दूरदर्शन के साधना चैनल पर उनका इन्टरव्यू भी प्रसारित किया जायेगा।

11 अन्य सांत्वना पुरस्कार भी प्रदान किये जायेंगे; जिसमें 500/- रुपये की राशि एवं प्रमाणपत्र के साथ सभी के नाम विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होंगे। पुरस्कृत लेखों को वाणी महिमा पत्रिका में प्रकाशित किया जायेगा। प्रतियोगिता में सम्मिलित होने हेतु नियम एवं शर्ते ह्न

1. एक निबन्ध लगभग 500 शब्दों में जैनागम के मूल ग्रन्थों के सन्दर्भों का उल्लेख हिन्दी भाषा में करते हुये प्रतियोगी द्वारा स्पष्ट एवं साफ शब्दों में हस्तलिखित होना चाहिये।

2. प्रतियोगी अपना नाम, आयु, पता एवं टेलिफोन नंबर अवश्य भेजें तथा शैक्षणिक योग्यता का उल्लेख भी करें।

3. निर्णायक मण्डल का निर्णय सर्वमान्य होगा। चयनित प्रतियोगियों से सम्पर्क किया जायेगा।

4. निबन्ध **30 जून 2006** तक निम्न पते पर पहुँच जाने चाहिये ह्न

निबंध प्रतियोगिता, अध्यात्मतीर्थ आत्मसाधना केन्द्र, घेवरा मोड़, नई दिल्ली-110041, फोन नं. (011) 28351289 **ह्न आदीश जैन**

वैराग्य समाचार

1. **नई दिल्ली निवासी** श्री महावीरप्रसादजी जैन सर्राफ का दिनांक 27 मार्च 2006 को शान्तपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया है। जैन व जैनेतर समाज में आपको शाकाहार प्रचारक के रुप में जाना जाता था। आपका जीवन सादगीपूर्ण एवं धर्ममय था। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग विज्ञान को 1001/- रुपये प्राप्त हुये है।

2. **फिरोजाबाद निवासी** श्री प्रभादेवी जैन धर्मपत्नी श्री सूरजभानजी जैन का 70 वर्ष की आयु में दिनांक 15 अप्रैल 2006 को णमोकारमंत्र के स्मरणपूर्वक देहावसान हो गया है। आप कई बार जयपुर व सोनगढ़ के शिविरों में पधारकर धर्मलाभ लेती थी। आपका सम्पूर्ण जीवन अध्यात्मधारा से परिपूर्ण था।

3. **भोपाल निवासी** श्री माणिकचन्द्रजी जैन नायक, परसोन का दिनांक 13 अप्रैल 2006 को शांतभाव से देहावसान हो गया है।

4. **दिल्ली निवासी** श्री बशेसरनाथजी जैन का दिनांक 27 मार्च 2006 को साम्यभावपूर्वक देहावसान हो गया है। आप दिल्ली जैन समाज के संरक्षक एवं कर्मठ कार्यकर्ता थे। साथ ही अनेक संस्थाओं के विभिन्न पदों पर कार्यरत थे।

4. **कलोल निवासी** श्री रतनचन्द आत्माराम शाह की स्मृति में उनके पुत्र कमलेश शाह की ओर से 1001/- रुपये प्राप्त हुये; एतदर्थ धन्यवाद !

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों ह्न यही भावना है।

शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर देवलाली (महा.) में...

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर द्वारा संचालित एवं पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली के तत्त्वावधान में 40 वाँ वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष **दिनांक 9 मई से 26 मई, 2006** तक अनेक मांगलिक कार्यक्रमों सहित **देवलाली-नासिक (महा.)** में आयोजित होने जा रहा है।

शिविर में मुख्यरूप से धार्मिक अध्ययन करानेवाले बन्धुओं (अध्यापकों) एवं मुमुक्षु भाईयों को शिक्षण-प्रशिक्षण विधि से प्रशिक्षित किया जायेगा।

इस अवसर पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, डॉ. उत्तमचन्दजी जैन, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील, ब्र. हेमचन्दजी 'हेम', पण्डित दिनेशभाई शाह, डॉ. उज्ज्वलाजी शाह, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा, पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री आदि के प्रवचनों और कक्षाओं का लाभ प्राप्त होगा।

सभी साधर्मियों को इस ज्ञानयज्ञ में पधारकर धर्मलाभ लेने हेतु हमारा हार्दिक आमंत्रण है।

देवलाली का पता ह्न पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, कहाननगर, लामरोड,देवलाली,जि.नासिक (महा.)
फोन : (0253) 2491044

निज परमात्मा के दर्शन

आत्मन् ! तू स्वयं भगवान है, तू अपनी शक्तियों को पहिचान! पर्याय की पामरता का विचार मत कर ! स्वभाव के सामर्थ्य को देख ! सम्पूर्ण जगत पर से दृष्टि हटा और स्वयं में ही समा जा! उपयोग को यहाँ-वहाँ न भटका, अन्तर में जा ! तुझे निज परमात्मा के दर्शन होंगे। **ह्न आत्मा ही है शरण, पृष्ठ : 82**

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) मई (प्रथम) 2006
RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा,** डबल एम.ए.जैनविद्या व धर्मदर्शन तथा इतिहास, नेट एवं **पण्डित जितेन्द्र वि.राठी,** साहित्याचार्य
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127